सुरेंद्र बांसल

पर्यावरण का अनुपम आदमी

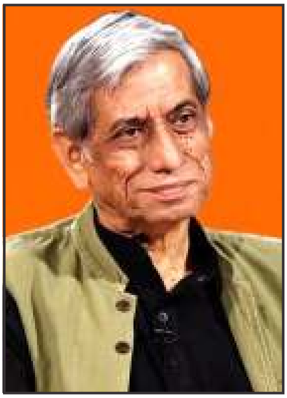

5 जून यानी पर्यावरण दिवस के दिन ही भैया अनुपम मिश्र का भी जन्म दिवस है। 1948 में वर्धा में जन्मे अनुपम जी आजीवन इसलिए सादा-सीधा जीवन जी पाए क्योंकि उनके जन्म से पूर्व भले गांधी जी का प्रयाण हो चुका था, लेकिन बाबा विनोबा और उनके पिता भवानीप्रसाद मिश्र वहां थे। इसलिए इन दोनों के कारण गांधी विचार के प्रति उनकी भक्ति सवाया-डेढ़ा हुई। जीवनपर्यंत माया के किसी फंदे में नहीं पड़े, दिल्ली जैसी माया नगरी में रहते हुए स्वयं को किसी निर्मल कुंड की तरह बचा कर रखा। अपनी पुस्तकों को रायल्टी-फ्री रखकर करोड़ों की रायल्टी छोड़ दी। चमक-दमक वाले किसी बड़े प्रतिष्ठान से नहीं जुड़े, गांधी शांति प्रतिष्ठान के एक कमरे में पर्यावरण कक्ष खोलकर एकनिष्ठ भाव से अनूठे कार्य संपादित कर अपनी संस्था और संपादक के पद का गौरव बढ़ाया। पर्यावरण के कार्य ने TED तक पहुंचाया। यह सब संभव हुआ जल संरक्षण के शोधमूलक कार्य की केंद्रीयता से, लोक की आंतरिक दृष्टि संपन्नता से, देशज ताने-बाने की भाषा हिन्दी में लिखने-गढ़ने से। प्रकाशन इतिहास में अपने अवदान को सुनहरे अक्षरों में दर्ज कराया-न भूतो न भविष्यति का उदाहरण पेश किया। यह गांधी-विनोबा, भवानीप्रसाद मिश्र की कविता थी, 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख - उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख' जिसे अनुपम जी ने जीवन में आत्मसात कर मुश्किल काम को सरलता और निरंतरता से अंजाम दिया।

हमारे दौर के बेहद प्रतिभाशाली युवा रचनाकार सुशोभित ने अनुपम जी को याद करते हुए लिखा है कि 'कुबेरनाथ राय ने अपनी किताब 'पत्र मणिपुतुल के नाम' में भवानी भाई की भाषा को 'निरंजन-भाषा' कहा है। यही बात अनुपम जी की सरल, स्वच्छ और सच्ची भाषा के लिए भी समीचीन है। निरंजन यानी जिसमें कोई अंजन न लगा हो। अंजन या तो शोभा बढ़ाने के लिए या बुरी नज़र से बचने के लिए लगाया जाता है। किंतु निरंजन-भाषा न तो शोभायमान होने के लिए होती है, न ही वह बुरी नज़र से डरती है। इसी से उसमें वह

खरापन चला आता है। उनकी लिखी निरंजन भाषा का अनुपम उदाहरण देखिये, 'कोई भी समाज शून्य में जीवित नहीं रह सकता। उसे अपने लोगों, अपने पशुओं, अपनी ज़मीन, अपने पेड़ पौधों, अपने कुएं, अपने तालाबों, अपने खेतों के लिए कोई-न-कोई ऐसी व्यवस्था बनानी पड़ती है, जो समयसिद्ध और स्वयंसिद्ध हो। काल के किसी खंड विशेष में समाज के सभी सदस्यों के साथ मिल-जुलकर जो व्यवस्था बनती है, उसे फिर सभी सदस्य मिल-जुलकर पाल-पोसकर बड़ा करते हैं और मज़बूत बनाते हैं। अपने ऊपर खुद लगाया हुआ यह अनुशासन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपा जाता है। एक पीढ़ी अपनी उम्र पूरी करे, उससे पहले वैसी ही परिपक्व पीढ़ी फिर सामने आ जाती है, इस धरोहर की रखवाली करने-तब समाज का जीवन बिना रुके, अबाध गति से चलता रहता है।'

भवानीप्रसाद जी का अंतिम संग्रह है - 'तूस की आग'। 'करके देखना चाहिए' शीर्षक से उनकी एक लंबी कविता है। उसकी अंतिम पंक्तियां हैं 'बातें जो / असाधारण और असंभव मानी जाती हैं / उनसे जुड़कर देखें / उनके विस्तार में उड़कर देखें / तो उनमें साधारण और संभव से / बहुत अधिक मिलता है / करके देखना चाहिए / असाधारण ढंग से / जीकर देखना चाहिए / असंभव को करते हुए / मर कर देखना चाहिए!' अपने पिता के द्वारा आकांक्षित-संकल्पित इस चुनौती को उन्होंने पूरा करके यानी असंभव को संभव करके, कठिन काम को संभवतम सीमा में पूरा करके दिखाया।

मृत्यु-प्रसंग में भी अनुपम जी का दृष्टांत अपने आदमकद पिता के मानदंड यानी अनुपम ही रहा। भवानी भाई ने सात-सात हृदयाघात झेले थे। लेकिन उनकी कलम ने अंत समय तक काव्य-कर्म को बाधित हुए बिना मृत्यु का सहज वरण किया। अनुपम जी ने भी अपनी कैंसर व्याधि को बिना दीन नहीं बने सहज भाव से झेला। वे सचमुच अनुपम थे। अगर कोई इसका उदाहरण खोजना चाहे कि लिखकर समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है तो अनुपम मिश्र इसके अकेले सबसे बड़े उदाहरण थे। उनकी किताब 'आज भी खरे हैं तालाब' और 'राजस्थान की रजत बूंदें' ने पूरे भारत में तो क्या विदेशों तक में जल संरक्षण का रास्ता दिखाया। आज कितने ही गांवों और छोटे शहरों ने भी उनके मॉडल को अपनाकर पानी के स्रोतों और संसाधनों की महत्वपूर्ण वापसी कराई है।

पानी, सूखा, बारिश, बादल में रुचि रखने वाले भविष्य के शोधार्थियों को अनुपम जी की आज भी खरे हैं तालाब, राज्यस्थान की रजत बूंदें और साफ माथे का समाज किताबें अवश्य पढ़नी चाहिए। ऐसे गहरी मानीख़ेज़ भाषा लिखने में लिखने वाले मर-मर जाते हैं, नहीं लिख पाते। उनकी ये सभी किताबें आज़ादी के बाद लिखीं हिंदी की बेहतरीन किताबों में से हैं।

'सैकड़ों, हज़ारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हज़ार

बनती थी। पिछले दो सौ बरसों में नए क़िस्म की थोड़ी-सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार को शून्य ही बना दिया।' दिवंगत अनुपम-मिश्र की इन चंद पंक्तियों के आगे हरेक का किया-धरा फीका लगता है। कैसे थोड़े से में व्यापक समाज की जिजीविषा को शब्दों में पिरो कर साक्षात कर दिया। पता नहीं, आज की पीढ़ी में कितनों ने अनुपम भाई को पढ़ा? पढ़ा तो कितना जिया? कितना समझा? कथित आंकड़ेबाज़ पर्यावरणविदों को अभागा नहीं तो क्या कहें?

अनुपम जी जीवन पर्यन्त हरबोलों की तरह तालाबों का यशोगान करते हुए कहते रहे, 'जो समाज को जीवन दे, उसे निर्जीव कैसे माना जा सकता है? तालाबों में, जलस्रोत में जीवन माना गया और समाज ने उनके चारों ओर अपने जीवन को रचा। जिसके साथ जितना निकट का संबंध, जितना स्नेह, मन उसके उतने ही नाम रख लेता है। देश के अलग-अलग राज्यों में, भाषाओं में, बोलियों में तालाब के कई नाम हैं। बोलियों के कोष में, ग्रंथों में पर्यायवाची शब्दों की सूची में तालाब के नामों का एक भरा-पूरा परिवार देखने को मिलता है। ग्रंथ हमीर नाम-माला तालाब के पर्यायवाची नाम तो गिनाता ही है, साथ ही उनके स्वभाव का भी वर्णन करते हुए तालाबों को 'धरम सुभाव' कहता है।

एक न एक दिन पर्यावरण के क्षेत्रों में जुटे देश की सांस्कृतिक परम्पराओं से कटे अधिकांश संदिग्ध एक्टिविस्ट और एनजीओ की भीड़ का तैर रहा प्रदूषित फेन किनारे लगेगा और अनुपम जी के देखे एक 'साफ माथे का समाज' का सपना साकार होगा जो आंकड़ेबाज़ी से ऊपर उठकर देश की परम्पराओं में गुंथे पर्यावरण के 'समय सिद्ध और स्वयं सिद्ध' सूत्र खोज-खोज कर निकालेगा और पर्यावरण के नाम रचा फ्रॉड तंत्र देखता रह जायेगा। ग़ैर ज़रूरी विकास के चलते दिन ब दिन बिगड़ते पर्यावरण के वैश्विक संकट को संबोधित करने के लिए आज भारतीयता से ओत-प्रोत अनुपम जी जैसी निर्मल और प्रसन्न जल जैसी आत्मीय भाषा की बहुत आवश्यकता है। ऋषि पुरुष को अशेष श्रद्धांजलि। अनुपम जी की स्मृति को नमन!

1023, प्रथम तल, सेक्टर-38बी, चंडीगढ़-160036 (पंजाब)
मो.-09988442421